।। अथ श्रीसाईसच्चरित ।। ।। अध्याय ३३ ।।

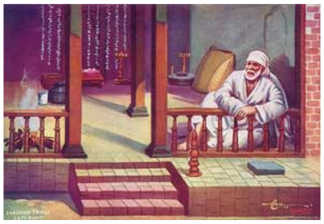

उदी की महिमा (१)

बिच्छू का डंक, प्लेक की गाँठ, जामनेर का चमत्कार, नारायण राव, बाला बुवा सुतार, अप्पा साहेब कुलकर्णी, हरीभाऊ कर्णिक।

पूर्व अध्याय में गुरु की महानता का दिग्दर्शन कराया गया है। अब इस अध्याय में उदी के महात्म्य का वर्णन किया जाएगा।

प्रस्तावना

आओ, पहले हम सन्तों के चरणों में प्रणाम करें, जिनकी कृपादृष्टि मात्र से ही समस्त पापसमूह भस्म होकर हमारे आचरण के दोष नष्ट हो जाएँगे। उनसे वार्त्तालाप करना हमारे लिए शिक्षाप्रद और अति आनंददायक है। वेअपने मन में '' **यह मेरा और वह तुम्हारा''** ऐसा कोई भेद नहीं रखते। इस प्रकार के भेदभाव की कल्पना उनके हृदय में कभी भी उत्पन्न नहीं होती। उनका ऋण इस जन्म में तो क्या, अनेक जन्मों में भी न चुकाया जा सकेगा।

उदी(विभूति)

यह सर्वविदित है कि बाबा सबसे दक्षिणा लिया करते थे तथा उस धन राशि में से दान करने के पश्चात् जो कुछ भी शेष बचता, उससे वे ईधन मोल लेकर सदैव धूनी प्रज्वलित रखते थे। इसी धूनी की भस्म ही 'उदी' कहलाती है। भक्तों के शिरड़ी से प्रस्थान करते समय यह भस्म मुक्तहस्त से उन सभी को वितरित कर दी जाती थी।

इस उदी से बाबा हमें क्या शिक्षा देते हैं? उदी वितरण कर बाबा हमें शिक्षा देते हैं कि इस अंगारे की नाईं गोचर होने वाले ब्रह्मांड का प्रतिबिम्ब भस्म के ही समान है। हमारा तन भी ईंधन सदृश ही है, अर्थात् पंचभूतादि से निर्मित है, जो कि सांसारिक भोगादि के उपरांत विनाश को प्राप्त होकर भस्म के रुप में परिणत हो जाएगा।

भक्तों को इस बात की स्मृति दिलाने के हेतु ही कि अन्त में यह देह भस्म सदृश होने वाला है, बाबा उदी वितरण किया करते थे। बाबा इस उदी के द्वारा एक और भी शिक्षा प्रदान करते हैं कि इस संसार में ब्रह्म ही सत्य और जगत् मिथ्या है। इस संसार में वस्तुतः कोई किसी का पिता, पुत्र अथवा स्त्री नहीं है। हम जगत् में अकेले ही आए हैं और अकेले ही जाएँगे। पूर्व में यह देखने में आ चुका है और अभी भी अनुभव किया जा रहा है कि इस उदी ने अनेक शारीरिक और मानसिक रोगियों को स्वास्थ्य प्रदान किया है। यथार्थ में बाबा तो भक्तों को दक्षिणा और उदी द्वारा सत्य और असत्य में विवेक तथा असत्य के त्याग का सिद्धांत समझाना चाहते थे। इस उदी से वैराग्य और दक्षिणा से त्याग की शिक्षा मिलती है। इन दोनों के अभाव में इस मायारुपी भवसागर को पार करना कठिन है; इसलिए बाबा दूसरे के भोग स्वयं भोग कर दक्षिणा स्वीकार कर लिया करते थे। जब भक्तगण बिदा लेते, तब वे प्रसाद के रुप में उदी देकर और कुछ उनके मस्तक पर लगाकर अपना वरद-हस्त उनके मस्तक पर रखते थे। जब बाबा प्रसन्न चित्त होते, तब वे प्रेमपूर्वक गीत गाया करते थे। ऐसा ही एक भजन उदी के सम्बन्ध में भी है। भजन के बोल हैं, '' रमते राम आओ जी आओ जी, उदिया की गोनियाँ लाओजी।'' यह बाबा शुद्ध और मधुर स्वर में गाते थे।

यह सब तो उदी के आध्यात्मिक प्रभाव के सम्बन्ध में हुआ, परन्तु उसमें भौतिक प्रभाव भी था, जिससे भक्तों को स्वास्थ्य, समृद्धि, चिंतामुक्ति एवं अनेक सांसारिक लाभ प्राप्त हुए। इसलिए उदी हमें आध्यात्मिक और सांसारिक लाभ पहुँचाती है। अब हम उदी की कथाएँ प्रारम्भ करते हैं।

बिच्छु का डंक

नासिक के श्री. नारायण मोतीराम जानी बाबा के परम भक्त थे। वे बाबा के अन्य भक्त रामचंद्र वामन मोड़क के अधीन काम करते थे। एक बार वे अपनी माता के साथ शिरड़ी गए तथा बाबा के दर्शन का लाभ उठाया। तब बाबा ने उनकी माँ से कहा कि '' अब तुम्हारे पुत्र को नौकरी छोड़कर स्वतंत्र व्यवसाय करना चाहिए।'' कुछ दिनों में बाबा के वचन सत्य निकले। नारायण जानी ने नौकरी छोड़कर एक उपाहार गृह 'आनंदाश्रम' चलाना प्रारम्भ कर दिया, जो अच्छी तरह चलने लगा। एक बार नारायण राव के एक मित्र को बिच्छू ने काट लिया, जिससे उसे असहनीय पीड़ा होने लगी। ऐसे प्रसंगों में उदी तो रामबाण प्रसिद्ध ही है। काटने के स्थान पर केवल उसे लगा ही तो देना है। नारायण ने उदी खोजी, परन्तु कही न मिल सकी। उन्होंने बाबा के चित्र के समक्ष खड़े होकर उनसे सहायता की प्रार्थना की और उनका नाम लेते हुए, उनके चित्र के सम्मुख जलती हुई ऊदबत्ती में से एक चुटकी भस्म बाबा की उदी मानकर बिच्छू के डंक मारने के स्थान पर लेप कर दिया। वहाँ से उनके हाथ हटाते ही पीड़ा तुरंत मिट गई और दोनों अति प्रसन्न होकर चले गए।

प्लेग की गाँठ

एक समय एक भक्त बाँद्रा में था। उसे वहाँ पता चला कि उसकी लड़की, जो दूसरे स्थान पर है, प्लेगग्रस्त है और उसे गिल्टी निकल आई है। उनके पास उस समय उदी नहीं थी, इसलिए उन्होंने नाना चाँदोरकर के पास उदी भेजने के लिए सूनचा भेजी। नानासाहेब ठाणे रेल्वे स्टेशन के समीप ही रास्ते में थे। जब उनके पास यह सूचना पहुँची, वे अपनी पत्नीसहित कल्याण जा रहे थे। उनके पास भी उस समय उदी नहीं थी। इसलिए उन्होंने सड़क पर से कुछ धूल उठाई और श्री साईबाबा का ध्यान कर उनसे सहायता की प्रार्थना की तथा उस धूल को अपनी पत्नी के मस्तक पर लगा दिया। वह भक्त खड़े-खड़े यह सब नाटक देख रहा था। जब वह घर लौटा तो उसे जानकर अति हर्ष हुआ कि जिस समय से नानासाहेब ने ठाणे रेल्वे स्टेशन के पास बाबा से सहायता करने की प्रार्थना की , तभीसे उनकी लड़की की स्थिति में पर्याप्त सुधार हो चला था, जो गत तीन दिनों से पीड़ित थी।

जामनेर का विलक्षण चमत्कार

सन् १९०४-०५ में नानासाहेब चाँदोरकर खानदेश जिले के जामनेर में मामलतदार थे। जामनेर शिरड़ी से लगभग १०० मील से भी अधिक दूरी पर है। उनकी पुत्री मैनाताई गर्भावस्था में थी और प्रसव काल समीप ही था। उसकी स्थिति अति गम्भीर थी। २-३ दिनों से उसे प्रसव-वेदना हो रही थी। नानासाहेब ने सभी संभव प्रयत्न किए, परन्तु वे सब व्यर्थ ही सिद्ध हुए। तब उन्होंने बाबा का ध्यान किया और उनसे सहायता की प्रार्थना की। उस समय शिरड़ी में एक रामगीर बुवा, जिन्हें बाबा बापूगीर बुवा के नाम से पुकारते थे, अपने घर खानदेश को लौट रहे थे। बाबा ने उन्हें अपने समीप बुलाकर कहा कि तुम घर लौटते समय थोड़ी देर के लिए जामनेर में उतरकर यह उदी और आरती श्री. नानासाहेब को दे देना। रामगीर बुवा बोले कि '' मेरे पास केवल दो ही रुपए हैं, जो कठिनाई से जलगाँव तक के किराये को ही पर्याप्त होंगे। फिर ऐसी स्थिति में जलगाँव से और ३० मील आगे जाना मुझे कैसे संभव होगा?'' बाबा ने उत्तर दिया कि '' चिंता की कोई बात नहीं। तुम्हारी सब व्यवस्था हो जाएगी।'' तब बाबा ने शामा से माधव अड़कर द्वारा रचित प्रसिद्ध आरती की प्रतिलिपि कराई और उदी के साथ नानासाहेब के पास भेज दी। बाबा के वचनों पर विश्वास कर रामगीर बुवा ने शिरड़ी से प्रस्थान कर दिया और पौने तीन बजे रात्रि को जलगाँव पहुँचे। इस समय उनके पास केवल दो आने ही शेष थे, जिससे वे बड़ी दुविधा में थे। इतने में ही एक आवाज उनके कानों में पड़ी कि '' शिरड़ी से आए हुए बापूगीर बुवा कौन हैं?'' उन्होंने आगे बढ़कर बतलाया कि '' मैं ही शिरड़ी से आ रहा हूँ और मेरा ही नाम बापूगीर बुवा है।'' उस चपरासी ने, जो कि अपने आपको नानासाहेब चाँदोरकर द्वारा भेजा हुआ बतला रहा था, उन्हें बाहर लाकर एक शानदार ताँगे में बिठाया, जिसमें दो सुन्दर घोड़े जुते हुए थे। अब वे दोनों रवाना हो गए। ताँगा बहुत वेग से चल रहा था। प्रातःकाल वे एक नाले के समीप पहुँचे, जहाँ ताँगेवाले ने ताँगा रोककर घोड़ों को पानी पिलाया। इसी बीच चपरासी ने रामगीर बुवा से थोड़ा सा नाश्ता करने को कहा। उसकी दाढ़ी-मूछें तथा अन्य वेशभूषा से उसे मुसलमान समझकर उन्होंने जलपान करना अस्वीकार कर दिया। तब उस चपरासी ने कहा कि मैं गढ़वाल का क्षत्रिय वंशी हिन्दू हूँ। यह सब नाश्ता नानासाहेब ने आपके लिए ही भेजा है तथा इसमें आपको कोई आपत्ति और संदेह नहीं करना चाहिए। तब वे दोनों जलपान कर पुनः रवाना हुए और सूर्योदय काल में जामनेर पहुँच गए। रामगीर बुवा लघुशंका को गए और थोड़ी देर में जब वे लौटकर आए तो क्या देखते हैं कि वहाँ न तो ताँगा था, न ताँगेवाला और न ही ताँगे के घोड़े। उनके मुख से एक शब्द भी न निकल रहा था। वे समीप ही कचहरी में पूछताछ करने गए और वहाँ उन्हें पता चला कि इस समय मामलतदार घर पर ही हैं। वे नानासाहेब के घर गए और उन्हें बतलाया कि''मैं शिरड़ी से बाबा की आरती और उदी लेकर आ रहा हूँ।'' उस समय मैनाताई की स्थिति बहुत ही गंभीर थी और सभी को उसके लिए बड़ी चिंता थी।

नानासाहेब ने अपनी पत्नी को बुलाकर उदी को जल में मिलाकर अपनी लकड़ी को पिला देने और आरती करने को कहा। उन्होंने सोचा कि बाबा की सहायता बड़ी सामायिक है। थोड़ी देर में ही समाचार प्राप्त हुआ कि प्रसव कुशलतापूर्वक होकर समस्त पीड़ा दूर हो गई है। जब रामगीर बुवा ने नानासाहेब को चपरासी, ताँगा तथा जलपान आदि रेलवे स्टेशन पर भेजने के लिए धन्यवाद दिया तो नानासाहेब को यह सुनकर महान् आश्चर्य हुआ और वे कहने लगे कि मैंने न तो कोई ताँगा या चपरासी ही भेजा था और न ही मुझे शिरड़ी से आपके पधारने की कोई पूर्वसूचना ही थी।

ठाणे के सेवानिवृत्त श्री.बी.व्ही. देव ने नानासाहेब चाँदोरकर के पुत्र बापूसाहेब चाँदोरकर और शिरड़ी के रामगीर बुवा से इस सम्बन्ध में बड़ी पूछताछ की और फिर संतुष्ट होकर श्री साईलीला पत्रिका, भाग १३(पृष्ठ नं ११,१२,१३) में गद्य और पद्य में एक सुन्दर रचना प्रकाशित की। श्री. बी.व्ही. नरसिंह स्वामी ने भी (१) मैनाताई (भाग ५,पृष्ठ १४) , (२) बापूसाहेब चाँदोरकर (भाग २०, पृष्ठ ५० और ३) रामगीर बुवा (भाग २७, पृष्ठ ८३) के कथन लिए हैं, जो कि क्रमशः १ जून १९३६, १६ सितम्बर १९३६ और १ दिसम्बर १९३६ को छपे हैं और यह सब उन्होंने अपनी पुस्तक '' भक्तों के अनुभव'' भाग ३ में प्रकाशित किए हैं। निम्नलिखित प्रसंग रामगीर बुवा के कथनानुसार उद्धृत किया जाता है।

'' एक दिन मुझे बाबा ने अपने समीप बुलाकर एक उदी की पुड़िया और एक आरती की प्रतिलिपि देकर आज्ञा दी कि जामनेर जाओ और यह आरती तथा उदी नानासाहेब को दे दो। मैंने बाबा को बताया कि मेरे पास केवल दो रुपये ही हैं, जो कि कोपरगाँव से जलगाँव जाने और फिर वहाँ से बैलगाड़ी द्वारा जामनेर जाने के लिए अपर्याप्त हैं। बाबा ने कहा '' अल्ला देगा। '' शुक्रवार का दिन था। मैं शीघ्र ही रवाना हो गया । मैं मनमाड ६-३० बजे सायंकाल और जलगाँव रात्रि को २ बजकर ४५ मिनट पर पहुँचा । उस समय प्लेग निवारक आदेश जारी थे , जिससे मुझे असुविधा हुई और मैं सोच रहा था कि कैसे जामनेर पहुँचूँ। रात्रि को ३ बजे एक चपरासी आया, जो पैर में बूट पहिने था, सिर पर पगड़ी बाँधे व अन्य पोशाक भी पहने था। उसने मुझे ताँगे में बिठा लिया और ताँगा चल पड़ा। मैं उस समय भयभीत-सा हो रहा था। मार्ग में भगूर के समीप मैंने जलपान किया। जब प्रातःकाल जामनेर पहुँचा, तब उसी समय मुझे लघुशंका करने की इच्छा हुई । जब मैं लौटकर आया, तब देखा कि वहाँ कुछ भी नहीं है। ताँगा और ताँगेवाला अदृश्य हैं। ''

नारायणराव

भक्त नारायणराव को बाबा के दर्शनों का तीन बार सौभाग्य प्राप्त हुआ। सन् १९१८ में बाबा के महासमाधि लेने के तीन वर्ष पश्चात शिरड़ी जाना चाहते थे, परन्तु किसी कारणवश उनका जाना न हो सका। बाबा के समाधिस्थ होने के एक वर्ष के भीतर ही वे रुग्ण हो गये। किसी भी उपचार से उन्हें लाभ न हुआ। तब उन्होंने आठों प्रहर बाबा का ध्यान करना प्रारंभ कर दिया। एक रात को उन्हें स्वप्न हुआ। बाबा एक गुफा में से उन्हें आते हुए दिखाई पड़े और सांत्वना देकर कहने लगे कि '' घबड़ाओ नहीं, तुम्हें कल से आराम हो जाएगा और एक सप्ताह में ही चलने-फिरने लगोगे ।'' ठीक उतने ही समय में नारायणराव स्वस्थ हो गए। अब यह प्रश्न विचारणीय है कि क्या बाबा देहधारी होने से जीवित कहलाते थे और क्या उन्होंने देह त्याग दी, इसलिए मृत हो गए? नहीं। बाबा अमर हैं, क्योंकि वे जीवन और मृत्यु से परे हैं। **एक बार भी अनन्य भाव से जो उनकी शरण में जाता है, वह कहीं भी हो, उसे वे सहायता पहुँचाते हैं। वे तो सदा हमारे बाजू में ही खड़े हैं और चाहे जैसा रुप लेकर भक्त के समक्ष प्रकट होकर उसकी इच्छा पूर्ण कर देते हैं।**

अप्पासाहेब कुलकर्णी

सन् १९१७ में अप्पासाहेब कुलकर्णी के शुभ दिन आए। उनका ठाणे को स्थानांतरण हो गया। उन्होंने बालासाहेब भाटे द्वारा प्राप्त बाबा के चित्र का पूजन करना आरम्भ कर दिया । उन्होंने सच्चे हृदय से पूजा की। वे हर दिन फूल, चन्दन और नैवद्य बाबा को अर्पित करते और उनके दर्शनों की बड़ी अभिलाषा रखते थे। इस सम्बन्ध में इतना तो कहा जा सकता है कि **भावपूर्वक बाबा के चित्र को देखना ही बाबा के प्रत्यक्ष दर्शन के सदृश है।** नीचे लिखी कथा से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

बालाबुवा सुतार

बम्बई में एक बालाबुवा नाम के संत थे, जो कि अपनी भक्ति, भजन और आचरण के कारण ' आधुनिक तुकाराम' के नाम से विख्यात थे। सन् १९१७ में वे शिरड़ी आए। जब उन्होंने बाबा को प्रणाम किया तो बाबा कहने लगे कि मैं तो इन्हें चार वर्षो से जानता हूँ, बालाबुवा को आश्चर्य हुआ और उन्होंने सोचा कि मैं तो प्रथम बार ही शिरड़ी आया हूँ, फिर यह कैसे संभव हो सकता है? गहन चिन्तन करने पर उन्हें स्मरण हुआ कि चार वर्ष पूर्व उन्होंने बम्बई में बाबा के चित्र को नमस्कार किया था। उन्हें बाबा के शब्दों की यथार्थता का बोध हो गया और वे मन ही मन कहने लगे कि संत कितने सर्वव्यापक और सर्वज्ञानी होते हैं तथा अपने भक्तों के प्रति उनके हृदयमें कितनी दया होती है। मैंने तो केवल उनके चित्र को ही नमस्कार किया था तो भी यह घटना उनको ज्ञात हो गई। इसलिए उन्होंने मुझे इस बात का अनुभव कराया है कि **उनके चित्र को देखना ही उनके दर्शन करने के सदृश है।**

अब हम अप्पासाहेब की कथा पर आते हैं। जब वे ठाणे में थे तो उन्हें भिवंडी दौंरे पर जाना पड़ा, जहाँ से उन्हें एक सप्ताह में लौटना संभव न था। उनकी अनुपस्थिति में तीसरे दिन उनके घर में निम्नलिखित विचित्र घटना हुई। दोपहर के समय अप्पासाहेब के गृह पर एक फकीर आया, जिसकी आकृति बाबा के चित्र से ही मिलती-जुलती थी। श्रीमती कुलकर्णी तथा उनके बच्चों ने उनसे पूछा कि आप शिरड़ी के श्रीसाईबाबा तो नहीं हैं? इस पर उत्तर मिला कि वे तो साईबाबा के आज्ञाकारी सेवक हैं और उनकी आज्ञा से ही आप लोगों की कुशल-क्षेम पूछने यहाँ आए हैं। फकीर ने दक्षिणा माँगी तो श्रीमती कुलकर्णी ने उन्हें एक रुपया भेंट किया। तब फकीर ने उन्हें उदी की एक पुड़िया देते हुए कहा कि इसे अपने पूजन में चित्र के साथ रखो । इतना कहकर वह वहाँ से चला गया। अब बाबा की अद्‌भुत लीला सुनिए।

भिवंडी में अप्पासाहेब का घोड़ा बीमार हो गया, जिससे वे दौरे पर आगे न जा सके। तब उसी शाम को वे घर लौट आए। घर आने पर उन्हें पत्नी के द्वारा फकीर के आगमन का समाचार प्राप्त हुआ। उन्हें मन में थोड़ी अशांति-सी हुई कि मैं फकीर के दर्शनों से वंचित रह गया तथा पत्नी द्वारा केवल एक रुपया दक्षिणा देना उन्हें अच्छा न लगा । वे कहने लगे कि यदि मैं उपस्थित होता तो १० रुपये से कम कभी न देता । तब वे फिर भूखे ही फकीर की खोज में निकल पड़े। उन्होंने मस्जिद एवं अन्य कई स्थानों पर खोज की, परन्तु उनकी खोज व्यर्थ ही सिद्ध हुई । पाठक अध्याय ३२ में कहे गए बाबा के वचनों का स्मरण करें कि **भूखे पेट ईश्वर की खोज नहीं करनी चाहिए।** अप्पासाहेब को शिक्षा मिल गई। वे भोजन के उपरांत जब अपने मित्र श्री. चित्रे के साथ घूमने को निकले, तब थोड़ी ही दूर जाने पर उन्हें सामने से एक फकीर द्रुत गति से आता हुआ दिखाई पड़ा। अप्पासाहेब ने सोचा कि यह तो वही फकीर प्रतीत होता है, जो मेरे घर पर आया था तथा उसकी आकृति भी बाबा के चित्र के अनुरुप ही है। फकीर ने तुरत्न ही हाथ बढाकर दक्षिणा माँगी। अप्पासाहेब ने उन्हें एक रुपया दे दिया, तब वह और माँगने लगा। अब अप्पासाहेब ने दो रुपए दिए। तब भी उसे संतोष न हुआ। उन्होंने अपने मित्र चित्रे से ३ रुपये उधार लेकर दिए, फिर भी वह माँगता ही रहा। तब अप्पासाहेब ने उसे घर चलने को कहा। सब लोग घर पर आए और अप्पासाहेब ने उन्हें ३ रुपये और दिए अर्थात् कुल ९ रुपये; फिर भी वह असन्तुष्ट प्रतीत होता था और माँगे ही जा रहा था। तब अप्पासाहेब ने कहा कि मेरे पास तो १० रुपये का नोट है। तब फकीर ने नोट ले लिया और ९ रुपये लौटाकर चला गया। अप्पासाहेब ने १० रुपये देने को कहा था, इसलिए उनसे १० रुपये ले लिए और बाबा द्वारा स्पर्शित ९ रुपये उन्हें वापस मिल गये। अंक ९ रुपये अर्थपूर्ण हैं तथा नवविधा भक्ति की और इंगित करते हैं (देखो अध्याय २१) । यहाँ ध्यान दें कि लक्ष्मीबाई को भी उन्होंने अंत समय में ९ रुपये ही दिए थे।

उदी की पुड़िया खोलने पर अप्पासाहेब ने देखा कि उसमें फूल के पत्ते और अक्षत हैं। जब वे कालान्तर में शिरड़ी गए तो उन्हें बाबा ने अपना एक केश भी दिया। उन्होंने उदी और केश को एक ताबीज में रखा और उसे वे सदैव हाथ पर बाँधते थे। अब अप्पासाहेब को उदी की शक्ति विदित हो चुकी थी। वे कुशाग्र बुद्धि के थे। प्रथम उन्हें ४० रुपये मासिक मिलते थे, परंतु बाबा की उदी और चित्र प्राप्त होने के पश्चात् उनका वेतन कई गुना हो गया तथा उन्हें मान और यश भी मिला । इन अस्थायी आकर्षणों के अतिरिक्त उनकी आध्यात्मिक प्रगति भी शीघ्रता से होने लगी। इसलिए **सौभाग्यवश जिनके पास उदी है, उन्हें स्नान करने के पश्चात् मस्तक पर धारण करना चाहिए और कु छ जल में मिलाकर वह तीर्थ की तरह ग्रहण करना चाहिए।**

हरीभाऊ कर्णिक

सन् १९१७ में गुरु पूर्णिमा के शुभ दिन डहाणू, जिला ठाणे के हरीभाऊ कर्णिक शिरड़ी आए तथा उन्होंने बाबा का यथाविधि पूजन किया। उन्होंने वस्तुएँ और दक्षिणा आदि भेंट कर शामा के द्वारा बाबा से लौटने की आज्ञा प्राप्त की। वे मस्जिद की सीढ़ियों पर से उतरे ही थे कि उन्हें विचार आया कि एक रुपया और बाबा को अर्पण करना चाहिए। वे शामा को संकेत से यह सूचना देना चाहते थे कि बाबा से जाने की आज्ञा प्राप्त हो चुकी है, इसलिए मैं लौटना नहीं चाहता हूँ । परन्तु शामा का ध्यान उनकी ओर नहीं गया, इसलिए वे घर को चल पड़े। मार्ग में वे नासिक में श्री कालाराम के मंदिर में दर्शनों को गए। संत नरसिंह महाराज, जो कि मंदिर के मुख्य द्वार के भीतर बैठा करते थे, भक्तों को वहीं छोड़ कर हरीभाऊ के पास आए और उनका हाथ पकडकर कहने लगे कि ''मुझे मेरा रुपया दे दो।'' कर्णिक को बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने सहर्ष रुपया दे दिया । उन्हें विचार आया कि मैंने बाबा को रुपया देने का मन में संकल्प किया था और बाबा ने यह रुपया नासिक के नरसिंह महाराज के द्वारा ले लिया। इस कथा से सिद्ध होता है कि **सब संत अभिन्न हैं तथा वे किसी न किसी रुप में एक साथ ही कार्य किया करते हैं।**

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।